IJRAR.ORG E-ISSN: 2348-1269, P-ISSN: 2349-5138

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | IJRAR.ORG

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मुक्ति की सामाजिक परंपरा में जुड़ता एक नया अध्याय : किन्नर विमर्श

अनूप कुमार गुप्ता
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी, पश्चिम बंगाल, भारत

शोध सारांश :

वर्तमान समय में अस्मिता विमर्शों ने हमें नया इतिहासबोध प्रदान किया है। इसी के आलोक में जब हम किन्नर विमर्श को देखते हैं तो वह विसंगतियाँ और अधिक स्पष्टता से नजर आने लगती हैं जो अबतक हमारे चेतन-अवचेतन का हिस्सा रहीं हैं। पितृसत्ता की आलोचनात्मक पड़ताल जो अबतक स्त्री विमर्श में हम देख रहे थे, किन्नर विमर्श में इसकी बारीकियाँ और अधिक परिलक्षित हो गयीं हैं। अस्मिता के प्रश्न हो या आर्थिक संकट, प्रजातान्त्रिक दृष्टि के निर्माण का प्रश्न हो या मानवीय संबंधों के परिवर्तन में श्रम की संस्कृति का योगदान इत्यादि सभी विषयों पर किन्नर विमर्श ने सोचने-समझने का नया नजरिया दिया है। अतः निश्चित रूप से किन्नर विमर्श हमारे समय के बहुत सारे स्टीरियोटाइप्स को तोड़ने में और एक बेहतर नागरिक समाज के निर्माण में गंभीर अध्ययन का विषय हो सकता है।

बीज शब्द:

अस्मिता, विमर्श, सेक्स, जेंडर, लैंगिकता, पितृसत्ता, सामाजिक सह-अस्तित्व, प्रजातान्त्रिक दृष्टि, मानवाधिकार आदि।

मूल आलेख :

'मुक्ति की परिकल्पना' सम्भवतः वैश्विक मनीषा की वह धारा है जो मानवीय सभ्यता की उस जमीन को सिंचित करती है जो शोषण, दमन और विभेद रूपी प्रदूषण से बंजर होती है। शोषण और दमन हर समाज की सच्चाई है जो विविध रूपों में हमें नजर आती है। वर्ण, वर्ग, जाति, धर्म, लिंग, नस्ल इत्यादि किसी न किसी रूप में समाज ने ऐसे मूल्य निर्मित किए हैं जो अमानवीयता की हद पार करते आए हैं। इसी शोषण-उत्पीड़न भरे वातावरण में जब 'सचेतन विरोध' की हाजिरी लगती है तब शुरुआत होती है 'विमर्श' की। आधुनिक विश्व की सामाजिक संरचना में अस्मिता विमर्शों की भूमिका आधारभूत है। अस्मिता विमर्शों का सम्बन्ध उन समुदायों से है, जिनको अपने किसी दोष या दायित्व के बिना किसी जाति, नस्ल, धर्म या लिंग विशेष में जन्म लेने के कारण सामाजिक उत्पीड़न उत्तराधिकार में प्राप्त होता है। गंगासहाय मीणा के अनुसार, "समाज के निम्न पायदान या हाशिये के लोगों को अपने होने का अहसास होने लगा था। ये अपने साथ होने वाले शोषण से छटपटाने लगे थे। इन अस्मिताओं ने अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी ख़ास अस्मिता को कारण बताया और उस शोषण तथा भेद-भाव से संघर्ष के लिए उस सम्बन्धित अस्मिता/पहचान को धारण करने वाले समुदाय को अपने साथ लेकर मुक्ति के लिए सामूहिक अभियान चलाया।"[1] अस्मिता-विमर्शों का उद्देश्य विश्व के विभिन्न समाजों में वंचित और शोषित समुदायों को सामाजिक यातना, अन्याय से मुक्ति और मानवाधिकारों में उनका न्यायोचित हिस्सा दिलाना है। विभिन्न

[1] मीणा, गंगासहाय, आदिवासी और हिन्दी उपन्यास अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या-11

सामाजिक समुदायों को उनकी अन्यायग्रस्त स्थिति के प्रति सचेत करना, अपनी वास्तविकता को पहचानना और अपने अधिकारों के लिए सजग व संघर्ष के लिए सन्नद्ध बनाना उनकी कार्यपद्धति है।

वर्तमान में हिन्दी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्शों के क्षेत्र में काफी कुछ लिखा जा रहा है। स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्श ने अपनी अस्मिता और मानवीय अधिकारों के लिए संघर्षपूर्ण लड़ाई लड़ी है और हमें नए सिरे से इतिहासबोध की दृष्टि प्रदान की है। इसी का सुफल है कि 21वीं सदी में हमारा ध्यान उन अस्मिताओं के प्रति भी गया है जिनको समाज का वह व्यवहार कभी हासिल नहीं हो पाया जिसको एक आम नागरिक महसूस करता है। यह समुदाय समाज का ऐसा गोपन है जो हम सबके बीच होकर भी हमारे बीच नहीं है। सदियों से प्रवंचना झेलता यह समुदाय अपनी हर पीड़ा को भुलाकर केवल कुछ विशेष मांगलिक कार्यों में ही हमारे सम्मुख होता है अन्यथा बसों, ट्रेनों, या ट्रेफिक सिग्नलों में तो अक्सर ही हम इनसे मूंह मोड़ने के आदि तो हैं हीं। इस आलेख का उद्देश्य 'किन्नर विमर्श' पर गहनता से बात करना है। शरद सिंह के शब्दों में "वे समाज का ऐसा गोपन है जिसे जानने की जिज्ञासा बहुत कम की गई। मानो उनका पूर्णकालिक अस्तित्व हो ही नहीं। वे न स्त्री हैं न पुरुष... वे मनुष्य हैं और उनकी लैंगिक विशेषता ही उनकी पहचान है। कभी ख्वाजासरा तो कभी किन्नर, तो कभी हिजड़ा, कभी ट्रांसजेंडर तो कभी थर्ड जेंडर कह कर उन्हें पुकारा गया। समाज द्वारा की जाने वाली उपेक्षा उन्हें सालती है किंतु वे हैं कि उपेक्षाओं का गरल पी कर मुस्कुराते हैं, नाचते हैं, गाते हैं।"[2]

'किन्नर' एक ऐसा समुदाय जिसे जन्म के साथ ही समाज का बहिष्कार झेलना पड़ता है। बाकी अस्मितामूलक विमर्शों की लड़ाई जहाँ मुख्यधारा के समाज से है लेकिन उनको समाज से पूरी तरह काटकर नहीं रखा जाता बल्कि वे साथ रहते हुए अपने अधिकारों के लिए संघर्षशील रहते हैं वहीं 'किन्नर समुदाय' या 'थर्ड जेंडर' तो समाज में बने रहने की बुनियादी आवश्यकताओं से जूझता दिखाई देता है। चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं० 203 नाला सोपारा' उपन्यास में मुख्य पात्र बिनोद एक किन्नर है और पत्र में अपने अंतर्मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए अपनी बा को लिखता है, "मेरी सुरक्षा के लिए कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया, जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआं है, जिसमें सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं। सांप- बिच्छू बनकर पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।"[3]

'किन्नर समुदाय' की लड़ाई उन सारी व्यवस्थाओं और नियमों-कानूनों से है, जिसके तहत बचपन से यह समुदाय निर्वासन का दुःख भोगता है। वर्जित और वंचित किये जाने के अलावा यह समुदाय अपने उन तमाम अधिकारों को भी खो देता है जो जीवन जीने के लिए अत्यंत आवश्यक होते है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के अवसर, संपत्ति का हक इत्यादि। अतः 'किन्नर विमर्श' किन्नर के मानवाधिकारों की लड़ाई है जिसमें 'स्वतंत्रता' एवं 'बराबरी' के साथ इस समाज में जीने का अधिकार अपनी अस्मिता की पूर्ण स्वीकारोक्ति के साथ मौजूद है। वे स्वीकार करते हैं कि मैं ट्रांसजेंडर हूँ। यह आत्मस्वीकृति युगों-युगों की निन्दा, अपमान एवं दमन की प्रतिक्रिया है। यह सचमुच अस्मिता की उद्घोषणा है। सामाजिक तिरस्कार और मूलभूत मानवाधिकारों से वंचना थर्ड जेंडर समुदाय के शोषण का एक बड़ा कारण है।

जब भी लैंगिकता की बात होती है तब 'सेक्स' और 'जेंडर' से जुड़े सवाल भी अहम् हो उठते हैं। स्त्री विमर्श ने इन पहलुओं पर बहुत महत्वपूर्ण तथ्य सामने रखें हैं। प्रभा खेतान लिखतीं हैं, "सेक्स और जेंडर दो अलग-अलग चीजें हैं। सेक्स का अर्थ हुआ स्त्री की जैविकता और जेंडर का अर्थ हुआ लैंगीकरण की वह सामाजिक प्रक्रिया जिसके कारण स्त्री का अस्तित्व उसकी विभिन्न भूमिकाएँ और पुरुष वर्ग के साथ उसका सम्बन्ध निर्धारित होता है। स्त्री का अपना होना और उस होने की सारी अर्थवत्ता अबतक पितृसत्ता निर्धारित करती आई है। चूंकि कोई 'दूसरा' यानी पुरुष जाति उसका निर्धारण करती है इसलिए स्त्री की अपनी स्वायत्तता नहीं रहती। उसका वस्तुकरण हो जाता है। स्त्री के संदर्भ में यह एक ऐतिहासिक सच है।"[4] स्त्री के सन्दर्भ में कही गयी यह बात 'ट्रांस जेंडर' व्यक्तियों के लिए भी पूर्णतया सटीक बैठती है। हमारे समाज ने 'स्त्री' और 'पुरुष' दोनों जेंडर के लिए तयशुदा भूमिकाएँ निर्धारित कर रखी हैं। स्त्री की 'कोमलता' और पुरुष की 'बलिष्ठता' से इतर का सौंदर्यशास्त्र समझने में समाज निर्माताओं को काफ़ी दिक्कतें होती हैं। इस स्थिति में स्त्री-पुरुष द्वैत से मुक्त होकर 'थर्ड जेंडर' की दृष्टि से समाज को देखने समझने में हमें इतना विलम्ब लगा तो इसमें कोई आश्चर्य होने वाली बात नहीं। 'मेरे हिस्से की धूप' उपन्यास में मोनी साजिद से कहती है, "मेरी तरह हमारा रिश्ता भी अधूरा है।...डॉक्टर ना

---

[2] सिंह, शरद 'जारी है अस्तित्व की लड़ाई', सामयिक सरस्वती, अंक-13-14, 2 जुलाई 2018

[3] मुद्गल, चित्रा, 'पोस्ट बॉक्स नं०203 नाला सोपारा', सामयिक प्रकाशन, संस्करण-2018, पृ०-11

[4] खेतान, प्रभा, पितृसत्ता के नए रूप (संपादक – राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे), राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या – 16)

बोल चुके हैं यह अधूरापन ही मेरी पहचान है। और यदि डॉक्टर इलाज कर भी देते तो क्या इस समाज की यादों से मैं अपनी पहचान मिटा सकूँगी? नहीं साजिद नहीं।"[5]

किन्नर विमर्श ने हमें सामाजिक सह-अस्तित्व की दृष्टि से समाज को देखने का नज़रिया दिया है। सह अस्तित्व की धारणा इस बात पर बल देती है कि हमारी विचार प्रणाली से इतर भी विचारों की कई रेखाएँ होती हैं जिनको हम मिटा नहीं सकते। आज हम इस वैज्ञानिक तथ्य से परे नहीं है कि स्त्री-पुरुष द्वैत से इतर भी एक ऐसी दुनिया है जिनको हमने सामाजिकता से बहिष्कृत रखने का काम किया है। सुधीश पचौरी प्रदीप सौरभ के उपन्यास 'तीसरी ताली' के संदर्भ में लिखते हैं कि, "यह उभयलिंगी सामाजिक दुनिया के बीच और बरक्स हिजड़ों, लौंडों, लौंडेबाजों, लेस्बियनों और विकृत-प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिए पर जिन्दगी जीती रहती है।... समकालीन 'बहुसांस्कृतिक' दौर के गे', 'लेस्बियन', 'ट्रांसजेंडर' अप्राकृत-यौनात्मक जीवन शैलियों के सीमित सांस्कृतिक स्वीकार में भी यह दुनिया अप्रिय, अकाम्य, अवांछित और वर्जित दुनिया है।... इनकी सबसे बड़ी समस्या आजीविका है जो इन्हें अन्ततः इनके समुदायों में ले जाती है। इनका वर्जित लिंगी होने का अकेलापन 'एक्स्ट्रा' है और वही इनकी जिन्दगी का निर्णायक तत्त्व है। अकेले-अकेले बहिष्कृत ये किन्नर आर्थिक रूप से भी हाशिये पर डाल दिये जाते हैं। कल्चरल तरीके से 'फिक्स' दिए जाते हैं। यह जीवनशैली की लिंगीयता है जिसमें स्त्री लिंगी-पुलिंगी मुख्यधाराएँ हैं जो इनको दबा देती हैं। नपुंसकलिंगी कहाँ कैसे जिएँगे? समाज का सहज स्वीकृत हिस्सा कब बनेंगे?"[6]

सवाल गंभीर है कि 'समाज का सहज स्वीकृत हिस्सा कब बनेंगे' लेकिन सवाल हमें खुद से भी पूछने की जरूरत है कि हम अपनी रूढीगत विचारों से कब मुक्त होंगे, कब हम उभयलिंगी खांचे से बाहर जी रहे लोगों की दुनिया को देखने का प्रयास करेंगे? विमर्श या कहें 'डिस्कोर्स' की खूबसूरती ही इस बात में है कि यह हमारे बहुत सारे स्टीरियोटाइप्स को तोड़ने का काम करती है। कहा जाता है कि पश्चिम में धर्म चिंतन पर बहस करने के उद्देश्य के साथ 'विमर्श' की शुरुआत हुई थी लेकिन अबतक की यात्रा में विमर्शों ने बहुत तरह की विचार प्रणालियाँ विकसित कर ली है। स्त्रीवादी चिन्तक, कवयित्री आनामिका लिखती हैं, "आध्यात्मिक मुहाने से भले ही शुरू हुआ हो मुक्ति का कल-कल निनाद, घाट-घाट का पानी पीती-पिलाती घोलती-घुलाती अब इसकी धारा चलती है तो इसका पहला अर्थ 'राजनीतिक दासता से मुक्ति' होता है ! पर वहाँ भी यह ठहरती नहीं - आर्थिक मुक्ति, जात-पाँत-धार्मिक घेरों और जकड़नों से मुक्ति और अंततः देह-मुक्ति के प्रश्नों से सीधी आ जुड़ती है।"[7]

निष्कर्ष :

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श पर गम्भीरता से काम हुआ है। हिन्दी कथा-साहित्य में किन्नरों के संघर्ष और यातनामय जीवन से साक्षात्कार कराकर और उनके प्रति मानवाधिकार के चलते संवेदना के माध्यम से जनजागरण का जो कार्य किया है, उससे किन्नर-विमर्श प्रतिष्ठित हुआ है। किन्नर को केंद्र में रखकर जो उपन्यास लिखे गए हैं उनमें क्रमश: 'यमदीप' (2002), 'मैं भी औरत हूँ' (2005), 'तीसरी ताली' (2011), 'किन्नर कथा' (2012), 'गुलाम मंडी' (2014). 'मैं पायल' (2016), 'पो. बाक्स नं. 203 नाला सोपारा' (2016), 'जिंदगी 50-50' (2017), आदि एक दर्जन हिंदी के मौलिक उपन्यास हैं तथा 'मैं क्यों नहीं?' (मराठी) और 'वाडामल्लि' (तमिल) उपन्यास भी लिखे गए हैं। इसके अलावा थर्ड जेंडर को केंद्र में रखकर कई काहनी संग्रह भी सामने आए हैं जिससे इस विषय को समझने के कई आयाम उपलब्ध हो सके हैं। अतः यह कहना समीचीन जान पड़ता है कि वर्तमान साहित्य में 'किन्नर विमर्श' भी मुक्ति की सामाजिक परंपरा में एक नया अध्याय रच रहा है।

---

[5] शर्मा, नीना हरेश, मेरे हिस्से की धूप, माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2020, पृष्ठ संख्या-53
[6] सौरभ, प्रदीप, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्कार-2018, पुस्तक के फ्लैप से
[7] अनामिका, स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्कार-2012, पृष्ठ संख्या-27